पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा २६-२७
तारीख १५-०२-१९८९, प्रवचन नंबर ११९

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। उसका प्रथम जीव नाम का अधिकार है। उसमें २६वीं गाथा का शीर्षक है। **अब अप्रतिबुद्ध जीव** यानि अज्ञानी जीव, जो देह को ही आत्मा माननेवाला, उसका नाम अप्रतिबुद्ध, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि जीव कहा जाता है। ऐसा **जीव कहता है उसकी गाथा कहते हैं :-**

गाथार्थ:- अज्ञानी **अप्रतिबुद्ध जीव कहता है कि - यदि जीव शरीर नहीं है तो** यानि जो जीव है, वो शरीर नहीं है तो, **तीर्थंकर-आचार्योंकी जो स्तुति की गई है** यानि आचार्य भगवान की स्तुति, तीर्थंकर भगवान की स्तुति की जाती है **वह** पूरी ही, **सभी मिथ्या** यानि **(झूठी) होती है;** शास्त्र में स्तुति का ब्यान तो बहुत आता है और ये जिनागम की बात है। शिष्य कहता है कि हमने जिनागम में पढ़ा है कि तीर्थंकर की, आचार्य भगवान की स्तुति होती है। तो जो आप ऐसा कहें कि जीव और शरीर भिन्न है तो फिर स्तुति खोटी (झूठ) होगी, मिथ्या होगी। **इसलिये हम समझते हैं कि जो आत्मा है वह देह ही है।** यानि देह सो ही आत्मा है, देह और आत्मा कोई अलग चीज है नहीं। दो पदार्थ हैं, ऐसा हमें जानने में आता नहीं है।

टीका:- जो आत्मा है वही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है। जो जीव है, वो ये पुद्गलद्रव्य स्वरूप जो शरीर है, वो ही जीव है। जीव और पुद्गल शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही पदार्थ है उसका नाम ही जीव है। इससे जीव भिन्न हमको जानने में आता नहीं है। **यदि ऐसा न हो तो** यानि शरीर वही जीव है, इसलिए तीर्थंकर-आचार्यों की स्तुति करने में आई है। तीर्थंकर भगवान की स्तुति होती है। भगवान की स्तुति, अरिहंत की प्रतिमा की पूजा होती है वो तो सब देखकर के पूजा करते हैं। हें? तो ये आत्मा और शरीर एक ही चीज है, एक ही चीज है। **यदि ऐसा न हो तो तीर्थंकर-आचार्योंकी जो स्तुति की गई है वह सब मिथ्या सिद्ध होगी।** यानि मिथ्या हो जाये, स्तुति मिथ्या होती नहीं है। स्तुति तो है, लिखी है शास्त्र में। मिथ्या कैसे होवे? ऐसे। **वह स्तुति इसप्रकार है:-** अभी उसकी दलील करते हैं।

अज्ञानी जीव अपनी ओर से दलील करता है। हम तो शरीर को ही जीव मानते हैं। शरीर से भिन्न कोई आत्मा हमको जानने में आता नहीं है। क्यों नहीं आता है? उसका कारण आपको ख्याल (में) आया? शरीर को देखकर देह और जीव को एक मानता है - एक बात, वो तो मानता है। और जो शरीर को ही आत्मा मानता है उसका कारण क्या है? शरीर से भिन्न जीव उसकी दृष्टि में नहीं आता है और शरीर ही देखकर शरीर को ही आत्मा जानता-मानता है, उसका कारण क्या है, मालूम है आपको? उसका कारण ये है कि इंद्रियज्ञान से शरीर ही जानने में आता है, इंद्रियज्ञान से आत्मा जानने में (नहीं आता है)।

मुमुक्षु: मुख्य बात यह है, ये है मुख्य बात। इंद्रियज्ञान से वो शरीर को जानता है, वो सोचता है (कि) यही आत्मा है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! उसके पास अतीन्द्रियज्ञान तो है ही नहीं। अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो तो-तो शरीर को आत्मा नहीं माने और इंद्रियज्ञान से जानता है शरीर, और शरीर को आत्मा मान लेता है - वो तो नियम है। वो (बात) वहाँ से शुरू होती है और ३१ वीं गाथा का ये मूल है।

मुमुक्षु: उसका जवाब ३१वीं गाथा में आयेगा।

पू. लालचंदभाई: उसका जवाब ३१ वीं गाथा में आयेगा। इंद्रियज्ञान का धर्म है कि अपने अमूर्तिक आत्मा को जानता नहीं है और मूर्तिक शरीर को जानता है और मूर्तिक शरीर को जानते-जानते उसको ही जीव मान लेता है। वो ही माना, अनंतकाल से वो ही माना। जैसे उसके अंदर मर्म है, ये दोनों ही गाथाओं में मर्म है कि जैसे उनके (तीर्थंकर का) शरीर को जीव माना (कि) ये जीव है, तो इसको (अपने शरीर को) जानते (हुए) उसको भी जीव मान लिया है। वहाँ से इधर आया।

मुमुक्षु: वहाँ उनका शरीर देखा तो शरीर को ही भगवान मान लिया।

पू. लालचंदभाई: तो (वे) तीर्थंकर हैं, भगवान हैं, भगवान हैं। तो शरीर को देखकर भगवान माना, तो इसको (अपने शरीर को भी) देखकर आत्मा मान लिया। उनके माध्यम से इसको (अपने शरीर को) भी आत्मा मान लिया। स्तुति के बहाने पर, भगवान की स्तुति करने गया मंदिर में, स्तुति की, पूजा की, मैंने भगवान का दर्शन किया, भगवान की पूजा की, वंदन की, स्तुति की, सब किया। तो वो अब कोई पूछे कि आपको क्या देखने में आया? कि मैंने भगवान का दर्शन किया।

मुमुक्षु: भगवान का दर्शन कहाँ हुआ?

पू. लालचंदभाई: उसने देखा शरीर।

मुमुक्षु: शरीर को देखकर के भगवान का दर्शन मानता है।

पू. लालचंदभाई: मानता है। तो शरीर तो आत्मा नहीं है।

मुमुक्षु: भगवान तो शरीर से भिन्न हैं।

पू. लालचंदभाई: भगवान तो वहाँ बैठे हैं, समवशरण में विराजमान। वो तीर्थंकर साक्षात् भगवान, उनसे (शरीर से) केवली भगवान तो भिन्न हैं। मगर उसको (शरीर को) देखकर ये अरिहंत भगवान हैं ऐसा मान लिया। ये आचार्य भगवान, आचार्य भगवान का शरीर देखता है, आचार्य भगवान की स्तुति करता है, पड़गाता है, तब तो 'ये आचार्य हैं' - शरीर को जीव मान लिया। और वहाँ शरीर को जीव मान लिया इसका कारण क्या है? इसको (अपने शरीर को) जीव मानता है इसलिए अपनी बुद्धि वहाँ (आचार्य भगवान में) भी लगा दी।

अपनी मान्यता, अज्ञानी की, शरीर को ही आत्मा मान रखा है अनंतकाल से तो उसको ऐसा भ्रम हो गया कि शरीर वो ही जीव है। शरीर से, इस (अपना) शरीर से भिन्न जीव उसको ख्याल नहीं आया। तो उसका (आचार्य का) शरीर से उसका आत्मा भिन्न है - ये ख्याल (तो) कहाँ से आवे? इधर जो भिन्न पड़े तो वहाँ ख्याल आ जावे। इधर तो भिन्न पड़ा नहीं, शरीर और आत्मा का भेदज्ञान करके आत्मा का अनुभव तो नहीं किया; और शरीर को देखकर, इसको (अपने शरीर को) इन्द्रियज्ञान से

देखकर उसको (अपने शरीर को) जीव मान लिया। इसको जीव माना तो वहाँ उनके शरीर को देखकर, वो ही भगवान (हैं, ऐसा) मान लिया। तो शरीर और आत्मा तो भिन्न हैं। आचार्य भगवान कहते हैं (कि) तेरी भूल हो गई । समझे? ये स्तुति बढ़िया है। अच्छी स्तुति है।

मुमुक्षु: समझने जैसी है।

पू. लालचंदभाई: समझने जैसी है। इंद्रियज्ञान जिसको जानता है उसको आत्मा मानता है - सिद्धांत। इंद्रियज्ञान समझे न? आँख से देखना, कान से सुनना, ऐसा ये इंद्रियज्ञान से जिस पदार्थ को देखता है उसको ही जीव मानता है। इसलिए वो भूल हो गई। अभी वो भूल निकालने का ३१ गाथा में जबाव देंगे, यथार्थ।

श्लोकार्थ :- वे तीर्थंकर-आचार्य वन्दनीय हैं। कैसे हैं वे? अपनी दलील करते हैं कि **अपने शरीरकी कान्तिसे दसों दिशाओंको धोते हैं-निर्मल करते हैं,** इतना तेज है परम औदारिक शरीर (का) कि सूर्य का प्रकाश फीका हो जाए उसमें। इतना सूर्य के प्रकाश से अनंतगुणा प्रकाश देह का, आत्मा का नहीं (अभी तो) शरीर की बात है। ये प्रकाश जो है ये पुद्गल का है। अरिहंत भगवान का नहीं है। कुछ समझ में आया?

मुमुक्षु: उसमें आता है न, पूजा वो चन्द्रप्रभु की।

मुमुक्षु: हाँ! तो वो शरीर की बात है कि आत्मा की?

मुमुक्षु: शरीर की बात है। वो आत्मा की बात नहीं हैं।

पू. लालचंदभाई: नहीं है।

मुमुक्षु: हमारे यहाँ नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा है और ये बहुत वहाँ भक्ति करें, करावें। काले वर्ण के नेमिनाथ... काले रंग के थे न नेमिनाथ?

पू. लालचंदभाई: हाँ! काले रंग के थे।

मुमुक्षु: श्याम! तो काला रंग किसका था? शरीर का था?

मुमुक्षु: शरीर का था।

पू. लालचंदभाई: नेमिनाथ भगवान का था?

मुमुक्षु: नहीं! शरीर का था। पहले जानते नहीं थे तो ऐसे बताते थे।

पू. लालचंदभाई: हाँ! कोई परेशानी नहीं, कोई परेशानी नहीं। अभी समझ में धीमे-धीमे आएगा, कोई प्रश्न नहीं है।

तो **अपने शरीरकी कान्तिसे दसों दिशाओंको धोते हैं-निर्मल करते हैं,** प्रकाशते हैं। वो परम औदारिक शरीर हो गया उनका तो इतना प्रकाश है, वो जीव का प्रकाश नहीं है, शरीर का है प्रकाश! ज्ञानमाला जी! वो शरीर का प्रकाश है। प्रकाश जो है न प्रकाश, ये पुद्गल की अवस्था है। अरूपी चेतन आत्मा का प्रकाश नहीं होता है, ज्ञान होता है। उसमें ज्ञान-प्रकाश होता है। ये जड़ का प्रकाश आत्मा में नहीं है। वो तो पुद्गल की स्थिति है। अच्छा!

स्वयं, **अपने तेजसे उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादिके तेजको ढक देते हैं,** स्वयं, **अपने तेजसे** इसमें है, भगवान **अपने तेज से** भगवान की बात करता है वो अज्ञानी, कि भगवान का इतना तेज है, शरीर

का तेज नहीं बोलता है। भगवान का इतना तेज है कि सूर्य का प्रकाश फीका पड़ता है, इतना। हमारे भगवान का प्रकाश तो देखो!

मुमुक्षु: शरीर को भगवान मानता है तब ऐसी बात करता है।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् शरीर को भगवान क्यों मानता है? कि इस (अपने) शरीर को आत्मा मानता है इसलिए। इस शरीर को जीव मानता है, मेरापना मानता है तो वहाँ भी, अपनी बुद्धि वहाँ पर स्थाप (लगा) दी। जैसा अभिप्राय इधर (अपने लिए) तो सब जगह और सब शरीर देखो तो जीव है, जीव है, जीव है; एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय जीव। वो तो शरीर के नाम हैं! दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय जीव नहीं है, उसके अंदर विराजमान भगवान आत्मा भिन्न है।

शरीर से भिन्न है आत्मा। तलवार और म्यान जैसे भिन्न है ऐसे शरीर और आत्मा भिन्न है। म्यान में तलवार रहती है मगर म्यान तलवार होती है? हो सकती नहीं है। तलवार भिन्न है (और) म्यान भी भिन्न है - ऐसा है। वो म्यान (शरीर) है, उस म्यान में चैतन्य प्रभु - तलवार विराजमान है। वो तलवार भिन्न (और) म्यान भिन्न। ये तो કોથળા (बोरी) है, बोरी। क्या कहते हैं? बारदान खाली, दाल का बारदान (अर्थात्) बोरी। ये तो बोरी है, बारदान। इसमें दाल अलग है। मीठी दाल अलग है। ऐसा ये चैतन्य मीठा-मधुर इससे (शरीर से) अलग है।

मुमक्षु: बस! इतना समझे तो ही सब समझ में आ जाये।

पू. लालचंदभाई: सब समझ में आ जाये। देह और आत्मा भिन्न समझे तो अनुभव होता है। वहाँ उसमें राग और पर्याय से भिन्न की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि देह जो भिन्न है, तो ये देह जो भिन्न है पर है वैसे सब - पर्याय मात्र, पुद्गल के परिणाम ये सब उसमें समा जाते हैं। समा जाते हैं। अच्छा!

अपने रूपसे लोगोंके मनको हर लेते हैं, भगवान अपनेरूप से लोगों के मन हर लेते हैं। देखने पर, आहाहा! ऐसे बाहुबली की प्रतिमा देखो। आहाहा! मन हरण करती है। अच्छी, बहुत मनोहर प्रतिमा है। मनोहर-मनोहर मन को हर लेती है प्रतिमा आहाहा! बाहुबली की। देखा न आपने? दर्शन किया कि नहीं?

मुमुक्षु: अभी नहीं गए गोम्मटेश्वर।

पू. लालचंदभाई: अरे! जाओ जाओ, एक दफे जाओ। गोम्मटेश्वर जाना, कभी समय मिले तो यात्रा में जाना।

अपने रूपसे लोगोंके मनको हर लेते हैं, दिव्यध्वनिसे (भव्योंके) कानोंमें साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं आहाहा! भगवान की वाणी, भगवान की वाणी! भगवान की क्या वाणी होती है?

मुमुक्षु: नहीं!

पू. लालचंदभाई: नहीं? तो इधर लिखा तो भगवान की वाणी।

मुमुक्षु: शरीर का परिणमन, वो तो भाषा वर्गणा का परिणमन है।

पू. लालचंदभाई: पुद्गल का है कि जीव का?

मुमुक्षु: पुद्गल का है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! भाषा जीव की नहीं है?

मुमुक्षु: भाषा जीव की नहीं है, भिन्न है वो तो।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! भिन्न है?

मुमुक्षु: बिल्कुल भिन्न है।

मुमुक्षु: भगवान नहीं बोलते हैं?

मुमुक्षु: नहीं।

मुमुक्षु: भगवान क्या करते हैं?

मुमुक्षु: नहीं! भगवान तो अपने स्वरूप में लीन रहते हैं।

पू. लालचंदभाई: स्वरूप में लीन रहते हैं।

मुमुक्षु: वाह! भिन्नता ही है वाणी की और आत्मा की।

पू. लालचंदभाई: जुदाई, जुदाई।

मुमुक्षु: भाषा वर्गणा परिणमित होती है, तो शरीर तो उस समय होता है न।

पू. लालचंदभाई: आत्मा के कारण से होती है न भाषा?

मुमुक्षु: नहीं!

पू. लालचंदभाई: नहीं?

मुमुक्षु: नहीं! उसमें तो अंश भी नहीं (है) आत्मा का।

पू. लालचंदभाई: आत्मा कारण नहीं है?

मुमुक्षु: आत्मा का अंश हो तो फिर ये..., ये..., इसमें तो आ जाना चाहिए।

पू. लालचंदभाई: अच्छी बात है!

कानोंमें साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं और वे एक हजार आठ लक्षणोंके धारक हैं।२४। वो जो एक हजार आठ लक्षण हैं वो शरीर के हैं, आत्मा के लक्षण नहीं है। आत्मा का लक्षण ज्ञान है। आत्मा का लक्षण ज्ञान है और शरीर के लक्षण, एक हजार आठ शरीर के लक्षण हैं। ये ध्वजा और ये साथिया (स्वस्तिक) और सब बहुत आते हैं लक्षण। हें? वो शरीर के अंदर (ऊपर) चिन्ह है, शरीर के अंदर चिन्ह है। शंख होता है, इसमें शंख होता है। ध्वजा होती है न? उसमें होती है। समझे? तो ये आत्मा में नहीं है, वो तो पुद्गल की अवस्था है।

मुमुक्षु: तो ये सहस्त्रनाम क्या है? ये एक हजार आठ नाम जो हैं न?

पू. लालचंदभाई: वो शरीर के हैं, भगवान आत्मा के (वो) नाम नहीं हैं। भगवान का एक नाम है, ज्ञायक। बस! एक नाम है ज्ञायक।

मुमुक्षु: पर्याय के नाम हैं। पर्याय के नाम हैं।

पू. लालचंदभाई: पर्याय के नाम हैं बस। हाँ! पर्याय के माध्यम से बहुत नाम आते हैं, तो विष्णु, ब्रह्मा, शिव बहुत नाम आते हैं। बहुत नाम आते हैं। उनके गुण के माध्यम से ऐसी (पर्याय) प्रगट हो गयी न? गुण, अपने गुणों के माध्यम से अनेक नाम कहते हैं। कितने नाम तो शरीर के और कितने गुण के हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव - ये अपनी पर्याय है। पूर्ण पर्याय हो गई न? उसका नाम है, पर्याय का नाम है। मगर आत्मा का नाम तो एक ज्ञायक है। एक हजार आठ नाम भी नहीं हैं।

-इत्यादिरूपसे तीर्थंकर-आचार्योंकी जो स्तुति है वह सब ही मिथ्या सिद्ध होती है। जो आप ना बोलते हैं कि देह और आत्मा भिन्न है तो-तो ये स्तुति झूठी हो जाएगी। स्तुति तो झूठी होती नहीं है - (ऐसा) जिनागम में है, हमने पढ़ा है। **इसलिये हमारा तो यही एकान्त निश्चय है कि** अज्ञानी दलील करता है **कि जो आत्मा है वही शरीर है,** आत्मा वो ही शरीर है, शरीर वो ही आत्मा है। शरीर से भिन्न आत्मा हमको दिखने में आता नहीं है क्योंकि उसके पास आत्मा को देखने की चक्षु खुली नहीं है। वो चक्षु बंद है, बंद है। तो शरीर को देखनेवाली चक्षु, ये चर्मचक्षु, इंद्रियज्ञान खुला है। तो इंद्रियज्ञान से देखता है, तो देखते समय उसको भगवान मानता है। बस! **शरीर है, पुद्गलद्रव्य है। इसप्रकार अप्रतिबुद्धने कहा॥२६॥**

यहाँ **आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसा नहीं है;** ऐसा नहीं है, तू सुन। **तू नयविभागको नहीं जानता।** यानि व्यवहारनय का कथन क्या और निश्चयनय का कथन क्या, वो दो नय का बँटवारा तेरे पास नहीं है। तू सुन! जो सर्वज्ञ भगवान की, उनकी वाणी में आया है, और तीर्थंकर की स्तुति का ज्ञान आता है मगर वो व्यवहारनय की बात है, निश्चयनय अलग है। ऐसा नय-विभाग तू जानता नहीं (है)।

वह नयविभाग इसप्रकार है ऐसा गाथा द्वारा कहते हैं :-

जीव-देह दोनों एक हैं - यह वचन है व्यवहारका;
निश्चयविषैं तो जीव-देह कदापि एक पदार्थ ना ॥२७॥

एक कदापि हो! कथंचित् नहीं, कदापि। किसी भी काल में, किसी भी काल में देह और आत्मा एक होते ही नहीं हैं। एक संयोग है और एक स्वभाव है। स्वभाव के साथ संयोग है; संयोग की ना नहीं है। ये (शरीर) आत्मा के साथ संयोग है मगर संयोग स्वभाव नहीं होता है और स्वभाव संयोग नहीं होता है। अलग-अलग दो पदार्थ हैं। संयोग समझे न? कि शक्कर है शक्कर, तो उसके बोरे में है। तो बोरा अलग और शक्कर (अलग), दो अलग-अलग चीजें हैं। दो अलग हैं।

गाथार्थ:- व्यवहारनय तो यह कहता है कि जीव और शरीर एक ही है; व्यवहारनय क्या कहता है? एक ही बात है, एक है। ये (शरीर और चेतन) सब जीव ही हैं, जीव से भिन्न नहीं है। **किन्तु निश्चयनयके अभिप्रायसे जीव और शरीर कभी भी एक पदार्थ नहीं हैं।**

एक वाक्य आज आप लिख लो कि निश्चयनय से जितना निरूपण किया उसको सत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जितना निरूपण आवे वो असत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान छोड़ देना (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५०) लिखो! निश्चयनय से... लिखवाओ आप बेन, लिखवाओ तुम्हारी भाषा में।

मुमुक्षु: निश्चयनय से जो निरूपण करने में आया हो, उसको सत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय के द्वारा जो निरूपण करने में आया हो, उसे असत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान छोड़ना कि ऐसा नहीं है। समझे? अब यह गाथा में जो है न...

पू. लालचंदभाई: इस गाथा में आया न कि **व्यवहारनय तो यह कहता है कि जीव और शरीर एक ही है;** व्यवहारनय का कथन है। व्यवहारनय का कथन है। तो ये व्यवहारनय का जो कथन है, वो सत्यार्थ है कि असत्यार्थ?

मुमुक्षु: असत्यार्थ।

पू. लालचंदभाई: तो श्रद्धान छोड़ देना (कि) 'ऐसा नहीं है'। व्यवहारनय कहता है कि देह और आत्मा एक है। वो खोटी बात है, झूठी बात है। व्यवहारनय झूठी बात करता है और निश्चयनय, **निश्चयनयके अभिप्रायसे जीव और शरीर कभी** एक नहीं हैं, भिन्न-भिन्न हैं। समझे? उसका कथन यथार्थ है, निश्चयनय का कथन यथार्थ, सत्य है तो श्रद्धान ऐसा करना। और व्यवहारनय का कथन आवे उसको असत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान छोड़ देना। श्रद्धा नहीं करना, ज्ञान करना।

मुमुक्षु: ज्ञान करना, उसका श्रद्धान नहीं करना।

पू. लालचंदभाई: (श्रद्धान) नहीं करना।

मुमुक्षु: मात्र जानने के लिए है।

पू. लालचंदभाई: जानने के लिए है, मानने के लिए नहीं है। बड़ा पंडित हो जायेगा आहिस्ते-आहिस्ते ऐसा लगता है। ठीक है! धीमे-धीमे समझ में जैसे-जैसे आवे न ऐसे आगे बढ़े। अच्छी बात है! ऐसे सरल है, सरल है। भोला है एकदम।

मुमुक्षु: इसकी एक शिकायत करनी है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! शिकायत?

मुमुक्षु: हाँ! मम्मी को करनी है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! करो मेरी हाज़िरी में कर दो।

मुमुक्षु: कि ये क्या (है) ऐसे घर में हँसाने के लिए ही सबको... मजाक का इसका बहुत nature (स्वभाव) है, बहुत सबको हँसाने का ही इसका (स्वभाव है) ऐसा। तो ये ऐसी-ऐसी बात करे (तो) गुस्सा आ जाता है मम्मी को, ये मेरी बहू है, ये मेरा लड़का है, लाओ मेरी है। मम्मी कहे है (कि) ऐसा मेरा-मेरा क्यों तुम (बोलते हो)? बोलने में भी मेरा-मेरा मत बोलो। बहुत, ऐसे ज्यादा मेरा-मेरा करता है।

मुमुक्षु: हम ये मालूम करते हैं कि ये इसके उत्तर में ये क्या बोलते हैं? उसको सुनने की जिज्ञासा होती है। ऐसे नहीं बोलता लेकिन (हम) ऐसे कर-करके बुलवाते हैं। हाँ! ये ही बात है।

पू. लालचंदभाई: ऐसी भाषा! भाषा विपरीत नहीं बोलना। भाषा विपरीत बोलने से क्या होगा कि भाव ऐसा (विपरीत) हो जाएगा, आहिस्ते-आहिस्ते।

मुमुक्षु: भाव तो विपरीत है ही अनादि से।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अनादि से है ही भाव विपरीत।

मुमुक्षु: और ऐसी ही भाषा बोलो...?

पू. लालचंदभाई: अरे! भाषा को सुल्टा करो, भाव बाद में सुल्टेगा।

मुमुक्षु: भाई! जब कोई नाटक होता है, नाटक। तो उसमें जो है...

पू. लालचंदभाई: मेरा घर है, मेरी बहू है बोलना ही नहीं।

मुमुक्षु: मेरी बहू बहुत अच्छी है। मेरा बबलू बहुत अच्छा है। मेरा बेटा, मेरा बेटा, ऐसे-ऐसे बोलते हैं।

पू. लालचंदभाई: भाषा बराबर (नहीं), सुधार लो अभी। वो कांताबेन की शिकायत (सही है)।

आपके हित के लिए है न? दूसरा तो कुछ है नहीं।

मुमुक्षु: ऐसी भाषा भी नहीं बोलनी चाहिए।

पू. लालचंदभाई: भाषा नहीं बोलना चाहिए।

मुमुक्षु: मनोरंजन हो जाता है। ये लोग बोलते हैं, तो उसमें ऐसे...

मुमुक्षु: नहीं ऐसे नहीं।

पू. लालचंदभाई: मनोरंजन का दूसरा तरीका करो, बस। मेरा-मेरा नहीं करना। मेरा-मेरा करने से श्रद्धा बन जाती है। श्रद्धा तो है ही, वो श्रद्धा दृढ़ होती है। फायदा नहीं है।

मुमुक्षु: नहीं करेंगे।

पू. लालचंदभाई: विपरीत वचन नहीं करना। बस! हो गया, हो गया अच्छा। ऐसा कर (हाथ जोड़) दिया न।

जैसे इस लोक में ये जो जगत है जगत, उसमें **सोने और चाँदी** सोना और रूपा (चाँदी) - उस**को गलाकर एक कर देनेसे एकपिण्डका व्यवहार होता है** एक पिंड बन जाता है। सोना और चाँदी गलाकर एक पिंड हो जाता है। **उसीप्रकार आत्मा और शरीरकी परस्पर एक क्षेत्रमें रहनेकी अवस्था होनेसे** एक आकाश के क्षेत्र में दो रहते हैं। आत्मा के क्षेत्र में शरीर नहीं है और शरीर के क्षेत्र में आत्मा नहीं (है)। आकाश के क्षेत्र में दो मिलते हैं। आकाश है न, उसमें दो पदार्थ मिलकर रहते हैं साथ में। **होनेसे एकपनेका व्यवहार होता है।** एक है।

जैसे सोना और चाँदी मिलान किया तो एक गट्ठा (पिंड) हो गया, लट्ठा (पिंड) हो गए। तो यह सोना है, ऐसा कहने में आता है। ऐसे ये शरीर और आत्मा अनादिकाल से एक गट्ठा हो गए हैं तो ऐसा कहने में आता है कि देह है वो जीव है, मनुष्य जीव है - ऐसा कहने में आता है। जैसे सोना और चाँदी (मिला दिया) तो सोना है ऐसा कहने में आता है, मगर सोना अलग है और चाँदी अलग है। ऐसा कहने में आता है कि जीव है, ये मनुष्य जीव है, देव जीव है, नारकी जीव है, तिर्यंच जीव है, ऐसा कहने में आता है। मगर भिन्न-भिन्न हैं, ये व्यवहार है। ऐसा व्यवहार से कहा जाता (है), कथनमात्र है। जैसा कथन है वैसा भाव नहीं समझना।

मुमुक्षु: कथन कहने के लिए है बस, ऐसे तो अलग-अलग हैं दोनों।

पू. लालचंदभाई: कहने के लिए एक हैं। सोना और चाँदी का पिंड सोना, सफेद सोना ऐसा कहने में आता है। ऐसे ये देह और आत्मा हैं तो अलग-अलग, अलग चीज हैं मगर एक क्षेत्र में उसका पिंड है न अभी, साथ में रहते हैं न तो कहने में आता है कि ये जीव है। एकेन्द्रिय जीव, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय जीव है, जीव है। शरीर का जीव, शरीर का नाम; शरीर, नाम तो शरीर का है। एकेन्द्रिय आदि द्रव्येन्द्रिय हैं।

मुमुक्षु: और नाम लेता है जीव।

पू. लालचंदभाई: हाँ! और भावेन्द्रिय भी है। वो सब जीव से अलग हैं।

मुमुक्षु: षट्काय का जीव।

पू. लालचंदभाई: कहा जाता है बस, कहा जाता है।

मुमुक्षु: कहने के लिए (है)।

पू. लालचंदभाई: कहने के लिए है, मानने के लिए नहीं।

एकपनेका व्यवहार होता है। शब्द कैसा इस्तेमाल किया है? कि देह और आत्मा एक है, ऐसे देह को जीव कहना ऐसा व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु: ऐसा निश्चय नहीं है।

पू. लालचंदभाई: (निश्चय नहीं है।) ये दाल की दुकान रवींद्र भैया की है, तो निश्चय है कि व्यवहार?

मुमुक्षु: व्यवहार।

पू. लालचंदभाई: व्यवहार झूठा कि सच्चा?

मुमुक्षु: झूठा।

पू. लालचंदभाई: बस!

मुमुक्षु: (दुकान मेरी) है ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: है ही नहीं। आप मालिक नहीं हैं। ये तो पुद्गल मालिक है, उसकी, दुकान का। और मकान बनाया नया उसका मालिक (कौन)?

मुमुक्षु: उसका मालिक भी पुद्गल ही है।

पू. लालचंदभाई: पुद्गल! बबलू भी नहीं?

मुमुक्षु: कोई नहीं है मालिक उसका।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! अच्छा!

मुमुक्षु: कोई नहीं (ऐसा नहीं) कहना। पुद्गल है उसका मालिक।

पू. लालचंदभाई: हम नहीं हैं (मालिक), हम नहीं हैं।

मुमुक्षु: पुद्गल ही मालिक है। अभी आयु कर्म पूरा हो जाए तो छोड़कर चले जायें। (यदि) मालिक हो तो साथ (में) ले जायें।

पू. लालचंदभाई: साथ ले जायें। हाँ! इसलिए मेरा नहीं है। मेरा-मेरा बोलना भी नहीं।

मुमुक्षु: अब नहीं बोलेंगे।

पू. लालचंदभाई: अभी नहीं बोलेंगे, अच्छी बात है!

एकपनेका व्यवहार, ये कथनमात्र, कहने के लिए (है) बस। ऐसा मानना नहीं। जैसा कहता है, व्यवहारनय कहता है कि देह आत्मा है ऐसा मानना नहीं, जानना बस। जाना कहने में आता है। **यों व्यवहारमात्रसे** देखो कितना खुलासा करते हैं। **यों व्यवहारमात्रसे ही**, व्यवहार से नहीं, व्यवहारमात्र से ही, **आत्मा और शरीरका एकपना है,** आहाहा! इस व्यवहार को ही निश्चय माना है, मर गया। व्यवहार का कथन झूठा है, उसको सच्चा मान लिया है, बस।

मुमुक्षु: वो ही संसार का कारण है।

पू. लालचंदभाई: वो ही संसार का कारण है। **परन्तु निश्चयसे एकपना नहीं है;**...

मुमुक्षु: नहीं है, निश्चय से एकपना है ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: है ही नहीं; भिन्न-भिन्न हैं।

मुमुक्षु: बिल्कुल।

पू. लालचंदभाई: जो भिन्न-भिन्न न हो तो शरीर को तो जला देते हैं इधर, तो आत्मा भी जलना चाहिए (अगर) एक हो तो। तो आत्मा तो मरता नहीं है। आत्मा तो निकल जाता है वहाँ से, तो एक नहीं है। ऐसा विचार करो न, तो भी काम हो जाता है कि शरीर को जलाते हैं, आप बहुत जगह पर जाते हैं, शरीर तो जलता है और आत्मा तो निकल गया उसका। शरीर और आत्मा एक नहीं हैं। उसकी तो राख हो जाती है, धूल।

परन्तु निश्चयसे एकपना नहीं है; क्योंकि निश्चयसे देखा जाये तो, जैसे पीलापन आदि और सफेदी आदि जिनका स्वभाव है ऐसे सोने और चांदीमें अत्यन्त भिन्नता होनेसे देखो! सर्वथा भिन्नपना बताया।

मुमुक्षु: अत्यंत भिन्न हैं।

पू. लालचंदभाई: अत्यंत भिन्न हैं। सोना और चाँदी सर्वथा भिन्न (हैं)। हाँ! **उनमें एकपदार्थपनेकी असिद्धि है,** यानि एक पदार्थ नहीं है। सोना भिन्न, चाँदी भिन्न, अलग-अलग हैं। **इसलिए अनेकत्व ही है,** एकपना नहीं है, अनेकपना है।

इसीप्रकार उपयोग और अनुपयोग, उपयोग जिसका लक्षण है (वो) आत्मा है, और जिसमें अनुपयोग लक्षण है (अर्थात्) उपयोग लक्षण नहीं है वो जड़ है, पुद्गल है। **उपयोग और अनुपयोग जिनका स्वभाव है ऐसे आत्मा और शरीरमें अत्यन्त भिन्नता** सर्वथा भिन्नपना **होनेसे** आहाहा! अत्यंत भिन्न हैं। जैसे शरीर अत्यंत भिन्न है, ऐसे कर्म अत्यंत भिन्न हैं, ऐसे रागादि अत्यंत भिन्न हैं। वो पूजा का भाव कथंचित् भिन्न कि सर्वथा भिन्न, पूजा का भाव?

मुमुक्षु: सर्वथा भिन्न।

पू. लालचंदभाई: तो सर्वथा भिन्न है, उसका कर्ता आत्मा बन सकता है ?

मुमुक्षु: नहीं।

पू. लालचंदभाई: तो पूजा किसने की?

मुमुक्षु: वो तो जड़ की क्रिया है, जड़ में होती है।

पू. लालचंदभाई: ये शुभभाव हुआ, वो शुभभाव अत्यंत भिन्न है कि कथंचित् भिन्न है?

मुमुक्षु: शुभभाव अत्यंत भिन्न है।

पू. लालचंदभाई: अत्यंत भिन्न है। अत्यंत भिन्न है तो उसके कर्ता आप बन सकते हैं?

मुमुक्षु: नहीं। जो भिन्न है उसका कर्ता कैसे बन जाएँगे?

पू. लालचंदभाई: तो शुभभाव किसने किया? कि शुभभाव पर्याय ने किया। और मैंने क्या किया? कि पर्याय ने शुभभाव किया ऐसा मैंने जाना और जानते-जानते मेरे आत्मा को जाना वो ज्ञान मेरा कर्म है, राग मेरा कर्म नहीं है। सुनिये! फिर से।

शुभभाव आया। हें? भगवान की पूजा का, वंदन का भाव आता है। ठीक है! उसके काल-क्रम में परिणाम आता है मगर परिणाम का कर्ता परिणाम है। कर्म से भी नहीं और आत्मा से भी नहीं,

अपनी योग्यता से इस पर्याय का कर्ता पर्याय है और राग पर्याय के साथ तन्मय है। राग आया न, वो पर्याय के साथ तन्मय है, मेरे साथ तन्मय नहीं है; इसलिए मेरे से भिन्न है, इसलिए मैं उसका कर्ता नहीं हूँ।

तो मैं कौन हूँ? कि जाना कि ये पर्याय का कर्ता पर्याय है, ऐसा जाना न? ऐसा जाना तो (अब) जाननहार को जानो। वहाँ भी जानने में रुकना नहीं, जाननहार को जानो तो ज्ञान कर्म हो जाता है। राग कर्म नहीं बनता है, राग को जाननेवाला ज्ञान भी कर्म नहीं बनेगा। वहाँ से छूटना कि राग का कर्ता मैं नहीं हूँ, राग का कर्ता राग है। अच्छा, (अब) आगे? राग को मैं जाननेवाला हूँ, थोड़ी देर के लिए करनेवाला नहीं हूँ। बाद में उसको भी जाननेवाला मैं नहीं हूँ। (राग को भी जाननेवाला मैं) नहीं हूँ। मैं तो जाननहार को जानता हूँ तो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होकर अनुभव हो जायेगा। ये कला है।

मुमुक्षु: अगर राग को ही जाननेवाला मैं बनूँ (तो)?

पू. लालचंदभाई: वो अज्ञान है। कल बताया था कि पहले तो आपने कहा कि राग का ज्ञाता है, कर्ता नहीं (है, ऐसा) पहला पाठ था। अभी दूसरा पाठ ले जाओ कि राग का मैं ज्ञाता भी नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक का ज्ञाता हूँ। आहाहा! क्योंकि जड़ को जानते-जानते चेतन जानने में नहीं आएगा। राग जड़ है। उसको जानते-जानते उपयोग आत्मा में नहीं आएगा। उसका निषेध करना पड़ेगा कि राग का जाननेवाला मैं नहीं हूँ।

कल दो बात आयीं थी, चार बात! कल चार बात आयीं थी। कर्ताबुद्धि, कर्ता का व्यवहार, ज्ञाताबुद्धि (और) ज्ञाता का व्यवहार। लिखा था न कल? अच्छा! राग का मैं कर्ता तो नहीं हूँ मगर राग का ज्ञाता भी नहीं हूँ।

मुमुक्षु: कर्तापना तो छूट जाता है लेकिन ज्ञातापना बाकी रहता है।

पू. लालचंदभाई: बात सत्य है! वो ज़रा ज्यादा पुरुषार्थ माँगे उसमें। कर्ता तो छूट जाता है कि पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं तो नहीं हूँ उसका (कर्ता), मैं तो उसको जाननेवाला हूँ। ज्ञान में आ गया, वो ज्ञान में आ गया। कर्ताबुद्धि तो गल गई यानि मिथ्यात्व तो गला। कर्ताबुद्धि गली तो टल जायेगी। अभी एक point (बिन्दु) है कि मैं, उसको जानते-जानते मेरा आत्मा जानने में नहीं आएगा। राग को जानने में रुक जाऊँ मैं (कि) ये राग है, राग है, राग है तो ज्ञायक कब (जानने) में आएगा? नहीं आएगा। तो अभी राग को जानने का बंद कर दो कि मेरे ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आ रहा है। राग को मैं जानता नहीं हूँ, दुःख को जानता नहीं हूँ, आकुलता होती है तो उसको भोगनेवाला तो नहीं; नींद उड़ जाए रात में, आकुलता में तो उसको भोगनेवाला तो नहीं मगर उसको जाननेवाला भी (मैं) नहीं हूँ। मैं तो जाननहार को जानता हूँ। बस! थोड़ा कठिन तो है मगर ऐसा (इतना) कठिन नहीं है। अशक्य नहीं है, आ जाएगा। आ जाएगा, ऐसा बोलते हैं।

मुमुक्षु: ये कहते हैं न कि ऐसा अनुभव जल्दी हो जाये।

मुमुक्षु: मार्गदर्शन मिलता है तो फिर अटक छूटती है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अटक छूटती है।

मुमुक्षु: और वो मार्गदर्शन नहीं मिलता है अटकन में क्या सोचे?

पू. लालचंदभाई: ऐसा एक मोरबी के पास छोटा गाँव था, मोरबी। तो ववाणीया, श्रीमद्‌जी का आश्रम है न, वहाँ उसके पास है। तो उसके पास छोटा गाँव था एकदम। तो उसका पटेल वेदांती था, बाद में जैनदर्शन को अपना लिया एक भाई के परिचय से। तो उसको राग का कर्तापना छूट गया कि राग का कर्ता नहीं हूँ। राग का मैं जाननेवाला हूँ, ज्ञाता हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। तो उसको खटक हुई कि अभी तो अनुभव तो होता नहीं है तो गुरुदेव तो चले गए, अभी क्या करें? उस time (दफे) में मैं मोरबी गया।

तो वहाँ से वो (उस) गाँव से चर्चा में आए। चर्चा में आने से उसने पूछा कि भाई साहब! राग का कर्ता तो छूट गया है, मैं तो ज्ञानवाला हूँ, जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। तो अभी काम नहीं बनता है। तो क्या उसमें क्षति, खामी (कमी), भूल क्या रह गई? क्या भूल है? कोई भूल को बताओ आप। मैंने कहा कि राग को जानने का तो बंद कर दो। करने का तो बंद किया (अब) जानना बंद करो। मैं तो ज्ञान को जानता हूँ। ज्ञान को ही नहीं, ज्ञायक को जानता हूँ। पहले ज्ञान में आओ (कि) ज्ञान जानने में आता है। ज्ञान के बाद ज्ञायक जानने में आता है। वहाँ आ जाओ तो काम हो जाएगा। बस!

अभी तो आपको सत्समागम मिलनेवाला है दो दिन के बाद। वो सब बतायेगी। जैसे हम पाँच महीने साथ में रहे न, उसमें बहुत-बहुत चर्चा होती थी। उसमें जो माल-माल होगा वो आपको बादाम का मैसूब (मसूरपाक)... हें? मम्मी-पापा को तो देगी न? हें? अकेली खानेवाली नहीं है वो, सबको खिलाती है। इधर तो खिलाती है।

मुमुक्षु: उधर भी खिलायेगी।

पू. लालचंदभाई: खिलायेगी? अच्छा!

अच्छा! **इसीप्रकार उपयोग और अनुपयोग जिनका स्वभाव है ऐसे आत्मा और शरीर** अलग-अलग हैं। आत्मा का लक्षण उपयोग है और शरीर का लक्षण अनुपयोग है यानि जड़ है, जड़ है। उपयोग, जानन-क्रिया शरीर में होती नहीं है। ये जानन-क्रिया उसमें नहीं है। अच्छा! इसमें (घड़ी में) जानन-क्रिया तो नहीं है। इसमें (घड़ी में) तो नहीं है, ये तो pure (शुद्ध) जड़ है मगर वो (शरीर) तो मिश्र-जड़ है।

मुमुक्षु: हें?

पू. लालचंदभाई: ये (घड़ी) तो pure (शुद्ध) जड़ है, उसके साथ तो जीव का संबंध नहीं है मगर इसके (शरीर के) साथ तो जीव का संबंध है। तो वो (शरीर) तो थोड़ा तो जाने न, ५० टका (प्रतिशत)? ५० प्रतिशत जीव जाने और ५० प्रतिशत (शरीर जाने)?

मुमुक्षु: १०० प्रतिशत भी नहीं जानता है ये।

पू. लालचंदभाई: नहीं जानता है? हाँ! (शरीर) जड़, pure जड़ है। हाँ! ये (घड़ी) जड़ है ऐसा जड़ है। यह तो lesson (पाठ) पक्का कराने के लिए (है)। समझे?

अत्यन्त भिन्नता आहाहा! सर्वथा भिन्नपना **होने से** इसमें राग, कर्म सब आ गया, शरीर के साथ। शरीर के साथ सब ले लेना। **एकपदार्थपनेकी असिद्धि है, इसलिये अनेकत्व ही है। ऐसा यह प्रगट नयविभाग है।** अनेक है, शरीर और आत्मा एक नहीं है, अनेकपना है, भिन्न-भिन्न हैं। एक में

उपयोग लक्षण है, जानन-क्रिया; उसमें (दूसरे में) जानन-क्रिया नहीं है। जिसमें जानन-क्रिया नहीं है, ये अनात्मा है, पुद्गल है, जड़ है, शरीर है, पर है - बस, ऐसा ले लेना। **इसलिये व्यवहारनयसे ही शरीरके स्तवनसे आत्माका स्तवन होता है।**

भावार्थ :- व्यवहारनय तो आत्मा और शरीरको एक कहता है, व्यवहरानय क्या कहता है? कि आत्मा और शरीर एक ही है। झूठी बात करता है व्यवहारनय। ख्याल रखना! और झूठी बात जो करे तो आप फँस जायेंगे व्यापार में भी। बहुत लोग व्यापार में आकर ठगते हैं, माल बतावें 'अच्छा माल है'। संभलना! व्यवहारनय का कथन वो भूल भरा है। व्यवहारनय तो आत्मा और शरीर को एक कहता है। व्यवहारनय भी सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है, संयोग का ज्ञान कराने के लिए, श्रद्धा कराने के लिए नहीं है। ज्ञान कराने के लिए है व्यवहार, श्रद्धा कराने के लिए नहीं है। श्रद्धा के काबिल नहीं है। आत्मा को जानने के बाद जानने के काबिल है, थोड़ी देर के लिए।

मुमुक्षु: शरीर और आत्मा को एक नहीं मानेंगे व्यवहारनय से तो उसमें तो फिर एकांत...

पू. लालचंदभाई: फिर जैसे राख को मसलता है और पाप नहीं लगता (समयसार गाथा ४६), ऐसे एक इंद्रिय, दो इंद्रिय जीव को मसलने से पाप नहीं लगता है (-जीव ऐसा न मान ले) इसलिए ये व्यवहारनय से जानने योग्य है कि अभी ये पुद्गल के साथ जीव का संयोग है तो उसको मारना नहीं है; मारने से पाप लगेगा - ऐसा। वो पाप की निवृत्ति के लिए व्यवहारनय है और पुण्य की एकत्वबुद्धि छोड़ने के लिए निश्चय(नय) है। इतना है कि ऐसा जाने कि एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय जीव है, तो (चार हाथ जमीन) देखकर (छहढाला ढाल ६, गाथा २) चलते हैं न मुनिराज भी। हें? तो उसको वो ख्याल है कि ये जो शरीर है उससे जीव भिन्न है, तो भी शरीर का संयोग है इसलिए अपने को संभलकर चलना चाहिए। इतना उसको लाभ होता है कि पाप से बचता है और पुण्य की प्रवृत्ति में आता है। बस, इतना ही। पाप से बच जाता है ऐसा समझने से, मगर उसमें एकत्वबुद्धि कर लेता है।

मुमुक्षु: बस! यही खतरा है।

पू. लालचंदभाई: ये खतरा है बड़ा और कोई तकलीफ नहीं है। आपका प्रश्न वो ही था न? हाँ! समझ गया मैं। देवलाली में हुआ था। व्यवहारनय से होता है, निश्चयनय से नहीं।

मुमुक्षु: बस! समझ में आ गया।

पू. लालचंदभाई: आ गया सब? अच्छा!

देवलाली में एक विचार आया कि ये लड़की हमारे इधर आई 'पुद्गल का परिणाम, पुद्गल का परिणाम, पुद्गल का परिणाम' ये क्या है? उसको (बेन के पिताजी को) ऐसी घबराहट हो गई। तो बेन आये मेरे पास कि मेरे पिताजी की शंका-आशंका का समाधान करो। आओ! खुशी से आओ। सभी बातों का फैसला है।

व्यवहारनय से कहा जाता है। पर्याय में राग होने से वो जीव का भाव है (ऐसा) व्यवहारनय से कहा जाता है। है पर्याय में राग, जीव में तो नहीं है। जीव में तो ज्ञान होता है और बाजू में, पड़ोस में, साथ में राग भी होता है पर्याय में, तो कहा जाता है कि 'रागी जीव' - तो (ये) व्यवहारनय का कथन है। ऐसा सत्यार्थ मानना तो राग और आत्मा एक हो जाएगा। ज्ञानमय है और रागमय नहीं है। बार-बार

विचार करने जैसी बात है! समय-समय पर भूला है तो समय-समय पर सावधान रहो। समय-समय पर भूलता है तो समय-समय पर सावधान रहो कि राग और आत्मा कदापि एक नहीं हैं! राग जड़ है (और) आत्मा चेतन है। ऐसे देह जड़ है और आत्मा चेतन है।

व्यवहारनय तो आत्मा और शरीरको एक कहता है और निश्चयनय भिन्न कहता है। इसलिये व्यवहारनयसे शरीरका स्तवन करनेसे आत्माका स्तवन माना जाता है॥२७॥ व्यवहारनय से कहा जाता है कि शरीर का स्तवन करने से भगवान का स्तवन हो गया - ऐसा कहा जाता है। बाकी सचमुच तो शुभभाव हुआ और एक माना तो मिथ्यात्व साथ में हुआ। क्या कहा? शुभभाव तो हुआ और साथ में मिथ्यात्व हो गया। ऐसे दूसरे जीव को बचाने जाओ आप, तो आपको ऐसा लगे कि मैंने बचाया। तो बचाया, तो करुणा आई तो शुभभाव तो हुआ मगर मैंने बचाया (ये) मिथ्यात्व हो गया। मिथ्यात्व हो गया।

मुमुक्षु: शुभ के साथ ही मिथ्यात्व कर लेता है। हाँ! बिल्कुल। शुभ के साथ एकत्व करके मिथ्यात्व कर लेता है। स्वयं से बचा, हमने कहाँ बचाया?

पू. लालचंदभाई: इस time (दफा) में, इस time में कांताबेन का ज़रा थोड़ा...नहीं! थोड़ा ठीक है। नहीं तो पहले समय में (पिछली बार) तो आप, आपको कुछ दिमाग में (समझ) नहीं आता था। अभी अभ्यास करने से, हाँ! विकास थोड़ा होता है। ज्ञान का विकास होता है धीमे-धीमे। कोई सीखकर आया नहीं (है)। हमारे देश में कहीं कोई सीखकर आया नहीं (है)। क्या ये आप (की भाषा में)?

मुमुक्षु: हाँ! कोई पेट से सीखकर नहीं आया है। सब यहीं आकर सीखते हैं।

पू. लालचंदभाई: धीमे-धीमे, धीमे-धीमे, जैसे-जैसे अभ्यास करे आत्मा के लक्षपूर्वक तो आहिस्ते-आहिस्ते ज्ञान की खिलवट...

मुमुक्षु: वो स्वाध्याय में बैठती है नियम से।

पू. लालचंदभाई: बैठती हैं?

मुमुक्षु: हाँ! सारा काम छोड़-छाड़कर।

पू. लालचंदभाई: रसोई-वसोई (भोजन बनाना) नहीं करती?

मुमुक्षु: नहीं! कुछ नहीं करती।

पू. लालचंदभाई: बहुत अच्छा! रसोई वो करती है।

मुमुक्षु: बहू करती है। सुमेघा करती है और वो भी वहाँ से सुनती रहती है सब।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! अच्छी बात है! बहुत वातावरण अच्छा है।

मुमुक्षु: उसको (लग्नी) लगी है अभी।

पू. लालचंदभाई: ऐसा, अच्छा अच्छा, बहुत अच्छा!

अभी तो समय हो गया। थकावट होती है। मूल point (बिंदु) तो आ गया, मुख्य आ गया। और पहले बात की न, वो ख्याल में रखना कि एकत्व क्यों होता है। वहाँ तो भिन्नत्व है।

मुमुक्षु: हाँ! वहाँ तो भिन्नत्व किया उसने।

पू. लालचंदभाई: भिन्नत्व है ही वहाँ तो। तीर्थंकर भगवान - भगवान और उनकी देह भिन्नत्व है।

इधर भी भिन्नत्व है। हें? तो एकत्व क्यों आपको लगता है, इसका कारण क्या है? (क्योंकि) इंद्रियज्ञान से आप जानते हैं। तो इंद्रियज्ञान जिसको जानता है उसमें भेदज्ञान करने की ताकत नहीं है, एकत्व करता है इंद्रियज्ञान।

मुमुक्षु: इंद्रियज्ञान में भेदज्ञान नहीं हो सकता है।

पू. लालचंदभाई: नहीं हो सकता है।

मुमुक्षु: इंद्रियज्ञान में एकत्व होता है।

पू. लालचंदभाई: एकत्व होता है; जानकर, जाने हुये का श्रद्धान हो गया। देह को जाना तो देह मेरा। बबलू को जाना तो बबलू मेरा। दुकान को जाना तो दुकान मेरी। इंद्रियज्ञान का ही ऐसा धर्म है (कि) एकत्व कर लेता है, ममत्व करता है। और अतीन्द्रियज्ञान...

मुमुक्षु: तो ये भेदज्ञान जो चलता है वो किसमें चलता है?

पू. लालचंदभाई: वो मानसिकज्ञान, सविकल्प भेदज्ञान (है)। उसका नाम सविकल्प-भेदज्ञान, उसका अर्थ- वो व्यवहार (है)। निश्चय के साथ व्यवहार होता है तो वो व्यवहार है। शुभभाव करना व्यवहार नहीं। (दोनों) भिन्न-भिन्न हैं ऐसा विचार करना उसका नाम व्यवहार है। ये बराबर कहा कि (जो) चलता है मानसिकज्ञान में (वो) क्या है? वो व्यवहार है।

मुमुक्षु: ये भेदज्ञान जो चलता है वो मानसिकज्ञान में चलता है?

पू. लालचंदभाई: मानसिकज्ञान में जो भेदज्ञान का विचार आता है उसका नाम व्यवहार है। शुभभाव करना व्यवहार नहीं है। शुभभाव से मेरा आत्मा भिन्न है, ऐसा विचार करना उसका नाम व्यवहार है। और आत्मा का अनुभव कर लेना उसका नाम निश्चय (है)।

मुमुक्षु: मानसिकज्ञान में जो भेदज्ञान चलता है उसका नाम व्यवहार है।

पू. लालचंदभाई: व्यवहार है और आत्मा का अनुभव कर लेना उसका नाम निश्चय है। उसके द्वारा आत्मा का धीमे-धीमे अनुभव हो जाएगा। भेदज्ञान जो किया न कि देह मेरा नहीं है, मैं ज्ञानमयी आत्मा हूँ, राग मेरा नहीं है, मैं जाननेवाला हूँ - ऐसा भेदज्ञान का विचार आया तो आप आत्मा के पक्ष में आ गए। भेदज्ञान में क्या है कि व्यवहार का निषेध, व्यवहार का निषेध आता है।

मुमुक्षु: आत्मा का पक्ष आता है।

पू. लालचंदभाई: आत्मा का पक्ष आता है। बराबर है! सही बात है। आत्मा का पक्ष आता है।

मुमुक्षु: आत्मा का पक्ष आता है वो ही व्यवहार है।

पू. लालचंदभाई: वो व्यवहार है। आत्मा के पक्ष का नाम व्यवहार है। और व्यवहार का पक्ष हो, पर का पक्ष हो तो अज्ञान (है); व्यवहार भी नहीं। व्यवहार की बात, व्यवहार की बात भी अलग है। जैन-दर्शन में व्यवहार है। जैन-दर्शन का व्यवहार अलग है।

मुमुक्षु: भेदज्ञान के द्वारा जो आत्मा का अनुभव होता है वो निश्चय है?

पू. लालचंदभाई: वो निश्चय है - भेदज्ञान के द्वारा अभेद का अनुभव होता है। भेदज्ञान के द्वारा बाद में अभेद का अनुभव हो जाता है। इस व्यवहार की किसी को खबर नहीं, क्रिया-कांड करो उसका नाम व्यवहार (मानते हैं)। ये व्यवहार नहीं है, ये तो अज्ञान है। करने की बात आई न? करना

तो स्वभाव में नहीं है। उसको जानना! जो शुभभाव आवे, भगवान की पूजा का भाव आया, उसको जानना उसका नाम व्यवहार और आत्मा को जानना उसका नाम निश्चय। सीधी बात है!

अच्छा हुआ आप तीनों इधर आ गए। अच्छा हुआ!

बाद में मन छूट जाता है, मन मर जाता है। प्रयत्न चालू रखना बस, भैया! बस।

मुमुक्षु: इंद्रियज्ञान में विचार होता है?

पू. लालचंदभाई: विचार होता है। अतीन्द्रियज्ञान में साक्षात् प्रत्यक्ष अनुभव होता है। मानसिकज्ञान परोक्ष है, लिख लो। मानसिकज्ञान परोक्ष है और आत्मिकज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

जाननेवाला हूँ, ज्ञान और आनंद की मैं मूर्ति हूँ - ऐसा ख्याल में आ जाता है। अनुमान ज्ञान में आता है। मानसिकज्ञान कहो कि अनुमान ज्ञान (कहो, एक ही बात है)। जैसे कोई जमीन ली आपने और मकान बनाने का नक्शा बनाया। नक्शा तो बना न? तो भी नक्शे के द्वारा आपको ख्याल में आया, अनुमान में आया कि ऐसा मकान बनेगा। बस! जब मकान बनेगा तब प्रत्यक्ष होगा, ऐसा।

मुमुक्षु: मानसिकज्ञान में प्रमाण?

पू. लालचंदभाई: मानसिकज्ञान में अनुमान, अनुमान आता है। जैसा है स्वरूप ऐसा ख्याल में आ जाता है। आत्मा का पक्ष आता है न, तब आत्मा का स्वभाव क्या है, उसके ख्याल में, उसके मानसिकज्ञान में आ जाता है। बाद में वो छूट जाता है विचार-विकल्प (जब) आगे बढ़ता है तब। बस!

मुमुक्षु: ये ही धर्म है।

पू. लालचंदभाई: वहाँ से धर्म की शुरुआत (है)। आत्मा के अनुभव से धर्म की शुरुआत होती है; बाकी कोई क्रिया-कांड में बाह्य के अशुभ में नहीं, शुभभाव में नहीं। आहाहा! **अनुभव चिंतामनि रतन**, **अनुभव है रसकूप**; **अनुभव मारग मोखकौ**, **अनुभव मोख सरूप** (नाटक समयसार उत्थानिका श्लोक १८) ऐसा! अनुभव से ही धर्म की शुरुआत, आत्मा के अनुभव से वृद्धि और अनुभव से पूर्णता, अरिहंत दशा हो जाती है।

मुमुक्षु: कितना ही शुभभाव से पूजा करो वो धर्म नहीं है।

पू. लालचंदभाई: शुभभाव है।

मुमुक्षु: शुभभाव है।

पू. लालचंदभाई: शुभभाव तो है। बंध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है। कषाय की मंदता है।

ॐ